मौखिक परम्परा, मौखिकता एवं इतिहास लेखन

Oral Tradition, Orality and Historiography

डॉ. पंकज सिंह

Scanned with CamScanner

मौखिक परम्परा, मौखिकता एवं इतिहास लेखन

Oral Tradition, Orality and Historiography

डॉ. पंकज सिंह

NAMYA PRESS.com

Scanned with CamScanner

प्रकाशक

नम्या प्रेस

भारत : 213, वर्धन हाउस, 7/28 अंसारी रोड, दरिया गंज, दिल्ली - 110002
यू.एस.ए : 10685 - बी हेजलहर्स्ट डॉ. # 31013 ह्यूस्टन, टेक्सास - 77043
ई-मेल : namyapress@gmail.com

संस्करण : प्रथम में प्रकाशित 2022 नम्या प्रेस
शीर्षक : मौखिक परम्परा, मौखिकता एवं इतिहास लेखन
संपादक : डॉ. पंकज सिंह
आईएसबीएन : 978-93-5545-066-1
कॉपीराइट : © डॉ. पंकज सिंह 2022 सर्वाधिकार सुरक्षित

यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय की जा रही है कि प्रकाशक और लेखक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इसका व्यावसायिक अथवा अन्य किसी भी रूप से उपयोग नहीं किया जा सकता। इन्हें पुनः प्रकाशित कर विक्रय या किराए पर नहीं दिया जा सकता है तथा जिल्दबंद अथवा किसी भी अन्य रूप में पाठकों के मध्य इसका परिचालन नहीं किया जा सकता। यह सभी शर्तें पुस्तक के खरीदार पर भी लागू हैं।

Scanned with CamScanner

अध्यायीकरण

पूरोवाक्	प्रो. बी. के. श्रीवास्तव	iv
भूमिका	डॉ. पंकज सिंह	ix
1. भारतीय मौखिक परंपराएं एवं इतिहास लेखन	प्रो. संजय कुमार, डॉ. पंकज कुमार	1
2. मौखिक परंपरा, मौखिक इतिहास लेखन संभावनाएं और सीमाएं	प्रो. बृजकिशोर शर्मा	13
3. मौखिक इतिहास के साधन एवम् उपयोजन	डॉ. सुरेश वसंत शिखरे	22
4. इतिहास लेखन में मौखिक परम्परा 'साक्षात्कार' की उपयोगिता	डॉ. अनुराधा माथुर	44
5. मौखिक इतिहासः संकल्पना एवं शोध	प्रो. अरुण वाघेला	54
6. भोजपुरी लोक में वैकल्पिक इतिहास बोध की मौखिक परम्परा	डॉ. राघवेन्द्र प्रताप सिंह	64
7. इतिहास लेखन की मौखिक परम्पराः राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. प्रतिभा	74
8. अतीत की आवाजः बस्तर की लोकगाथा बाली–जगार	प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल	81
9. मौखिक परम्परा में महाभारत	प्रो. बी. के. श्रीवास्तव	88
10. बस्तर की मौखिक परम्पराओं में ऐतिहासिकता	डॉ. निवेदिता वर्मा	95
11. इतिहास लेखन, मौखिक परम्परा एवम् लोककथा	डॉ. प्रीति अनिल खंदारे	102
12. बुंदेली लोक जीवन में धार्मिक मान्यताऐं एवं प्रथायें	डॉ. संजय बरोलिया	108
13. गोवा मुक्ति संग्राम और जबलपुर के सत्याग्रहियों के संस्मरण	प्रो. आर. एन. श्रीवास्तव, प्रो. वंदना गुप्ता	114
14. गौरक्षक लोकदेवता छोड़सिंहजी : एक ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ. भरत देवरा	123
15. जनश्रुति एवं इतिहास में संवत् प्रवर्त्तक विक्रमादित्य	स्वर्गीय डॉ. रामकुमार अहिरवार	129
16. Indian Approving Disciplines and their Implications: Oral Traditions and Archaeology	Dr. Babasaheb Shep	135

Scanned with CamScanner

7

इतिहास लेखन की मौखिक परम्पराः राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के विशेष सन्दर्भ में

प्रो. प्रतिमा

आचार्य, इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

ज्ञान की एक शाखा के रूप में प्राचीन भारत में 'इतिहास' का व्यापक महत्व था। कालान्तर में अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण आदि के रूप में इसके विविध पक्षों का स्वतंत्र विकास हुआ। राजनैतिक घटनाओं, सम्राटों की वंशावलियों आदि के उल्लेख से युक्त पक्ष को 'इतिवृत्त' अथवा 'इतिहास' के रूप में देखा गया। समय के साथ–साथ इस ऐतिहासिक सामग्री में भिन्न–भिन्न आधारों पर अलिखित (मौखिक) परम्पराओं का मिश्रण भी होता चला गया। ये मौखिक परम्पराएं गाथाओं एवं आख्यानों आदि के रूप में हैं। इसी प्रकार पुराण भी अतीत से एकत्रित कहानियाँ एवं संस्मरण ही हैं।

ब्राह्मण एवं सूत्र साहित्य यज्ञों तथा घरेलू उत्सवों के अनिवार्य अंग के रूप में वर्णनात्मक कथाओं के पाठ का उल्लेख करते हैं। अश्वमेध जैसे यज्ञों में पूरे वर्ष प्रतिदिन देवताओं और वीरों की कथाओं का पारायण होता था। किसी की मृत्यु के बाद भी शोकाकुल घर के बाहर किसी छायादार स्थान में बैठकर इतिहास–पुराण की कथाएँ सुनाकर मृतक के परिजनों को सांत्वना दी जाती थी। महाकवि बाणभट्ट द्वारा हर्षचरित में ऐसा उल्लेख इस प्रथा के 7वीं शती में होने का संकेत देता है। इसी प्रकार मृत्यु या अन्य किसी भारी क्षति के बाद और अधिक दुर्भाग्य से बचने के लिए जब घर की अग्नि को बाहर निकाल दिया जाता था और घर में दो अरणियों के घर्षण से नई अग्नि उत्पन्न की जाती थी, तब परिवार के लोग खामोश रात में आग को जलाए रखते हुए भविष्य को मंगलमय बनाने वाले इतिहास एवं पुराणों का तथा बड़ी लम्बी आयु प्राप्त करने वाले लोगों की जीवन–गाथाओं का श्रवण करते थे।

वस्तुतः घटनाओं के क्रमबद्ध विवरण पर जोर देने वाली इतिहास–लेखन की पाश्चात्य शैली के विपरीत भारतीय शैली में विविध घटनाओं और वस्तुओं का

Scanned with CamScanner

कथात्मक–गाथात्मक विवरण प्रमुख है। इसलिए शिलालेखों, ताम्रपत्रों और लिखित विवरणों के साथ–साथ आमजन में गहरे पैठ चुकी देशकालातीत जातीय स्मृतियाँ भी स्वतः ही इतिहास के दायरे में आ जाती हैं।

ऐसा नहीं कि शेष विश्व ने मौखिक सन्दर्भों का प्रयोग नहीं किया। सूचनाएं और विचार मौखिक रूप में कहानियों, कविताओं और गीतों के रूप में आगे बढ़ते रहे हैं। पाश्चात्य विश्व में मौखिक परम्परा के स्पष्ट संकेत बाइबिल में प्राप्त होते हैं। फिर सुकरात ने इनका उपयोग किया और फारसी युद्धों के अपने इतिहास में 'हेरोडोटस' ने मौखिक स्रोत प्रयुक्त किए।

आधुनिक अवधारणा के रूप में मौखिक इतिहास को 1940 के दशक में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एलन नेविन्स एवं उनके सहयोगियों ने प्रस्तुत किया। प्रारम्भिक मौखिक इतिहास अभिलेखागार में जहाँ महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों, कूटनीतिज्ञों, सैनिक अधिकारियों एवं व्यापारिक नेताओं के साक्षात्कारों पर बल दिया गया, वहीं 1960 और 1970 के दशक में नए तरह के सामाजिक इतिहास में सामान्यजन के साक्षात्कारों को भी स्थान मिला।

वर्तमान सन्दर्भ में बात की जाए तो अतीत के पुनर्निर्माण में मौखिक परम्पराओं एवं साक्ष्यों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। न केवल स्वतंत्र रूप से, वरन् पुरातत्व और साहित्य के साथ मिलकर इतिहास की टूटी कड़ियों को जोड़ने और उसे सुदृढ़ धरातल पर खड़ा करने में इनकी महती भूमिका होगी।

राजस्थान के राजनैतिक इतिहास के सन्दर्भ में देखें तो अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ अभियान, महाराणा प्रताप एवं अकबर के बहुचर्चित हल्दीघाटी युद्ध तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम आदि को स्थानीय लोकगीतों, कथाओं, किंवदन्तियों एवं जनश्रुतियों के तालमेल से नए प्रकाश में देखा जा रहा है।

अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ अभियान को देखें तो उसके अन्य अभियानों की भाँति ही उसकी राज्य–विस्तार योजनाओं का परिणाम रहे इस अभियान के विषय में किसी भी समकालीन इतिहास ग्रन्थ अथवा अभिलेख में रानी पद्मिनी के प्रति अलाउद्दीन की आसक्ति को युद्ध के कारण के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, तथापि स्थानीय परम्पराओं एवं लोकगाथाओं के आलोक में यह भी युद्ध का एक प्रमुख कारण प्रतीत होता है। चित्तौड़ क्षेत्र में अलाउद्दीन के इस अभियान, साका, जौहर आदि से जुड़े अनेकों लोकगीत, कथाएँ, किंवदन्तियां एवं जनश्रुतियां प्रचलित हैं और आज 700 वर्ष बीत जाने पर भी यह घटना लोक में एकदम ताजी है। अलाउद्दीन की सेना ने गंभीरी, बेड़च नदियों के बीच के क्षेत्र में डेरा डाला था। उसी सेना पर गोरा–बादल के नेतृत्व में 700 पालकियों में स्त्री वेश में सवार वीर राजपूत आक्रमण कर रावल रतन सिंह को छुडवाने के पश्चात् युद्धस्थल में वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। आज उस जगह भोईखेड़ा, कीरखेड़ा गाँव पालकी उठाने वाले कहारों के ही गाँव हैं, जिन्हें शासकीय सेवा के बदले ये गाँव जागीर में प्राप्त

Scanned with CamScanner

हुए। इन गाँवों में आज भी गोरा–बादल लोकदेवता के रूप में पूजे जाते हैं और वहाँ के खेतों में आज भी युद्ध में काम आए वीरों तथा उनके साथ सती होने वाली वीरांगनाओं की स्मृति में पाषाण स्मारक (सती स्तम्भ) यत्र तत्र मौजूद हैं, जिन्हें सदियों से आमजन मालिपन्ना लगाकर पूजते आए हैं। मान्यता है कि गोरा–बादल के नेतृत्व में शिविर में आई पालकियों को उठाने वाले कहार कीरखेड़ा गाँव के ही थे। इन वीर कहारों की बड़वा भाट पोथी में भी इस घटना क्रम का उल्लेख प्राप्त होता है।[5]

इसी तरह हल्दीघाटी के युद्ध तथा बाद के स्वातंत्र्य समर में भील जनजाति की पराक्रम गाथा भील लोककथाओं में प्राप्त होती है।[6] अंग्रेजी अत्याचार और शोषण को बहुत पहले पहचान कर उन्होंने अपने गीतों में अभिव्यक्त किया –

रे इतरो दुख कुन सेवे राज, रे इतरो दुख बेढे तो पेरो मरे राज।
रे मारी अरजी सुनज्यो राज, रे खड धान रो भोग मती लेवो राजा।। [7]

आगे चलकर गाँधीजी के आन्दोलनों से प्रभावित आदिवासी 'भूरिया जाजे थारा वाले देश' जैसे गीतों से उन्हें भारत छोड़ देने की चेतावनी भी देते हैं।

किसी भी स्थल की संस्कृति हो, वह स्वयं अपनी यात्रा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लोक परम्पराओं पर आरूढ़ होकर ही करती है। इसी प्रकार सांस्कृतिक इतिहास मूलतः लोक–वर्णन (Folk Narration) पर ही टिका है क्योंकि इसके बहुत से तत्व अलिखित ही रहे, और लिखे हुए का भी बहुत बड़ा हिस्सा समय की धारा में प्रवाहित हो गया है।

राजस्थान के लोकगीत और लोकनृत्य हों, अथवा लोकानुरंजन कलाएँ, सभी स्वयं में एक पूरे परिवेश का प्रतिनिधित्व करती हैं और सभी में कोई न कोई ऐतिहासिक कालखण्ड सांस ले रहा होता है। पणिहारी, इंडोरी जैसे लोकगीतों में जहाँ जल जैसे जीवनाधार के लिए इस प्रान्त का संघर्ष परिलक्षित होता है, वहीं पंछीड़ा, कुरजां जैसे गीत युद्ध अथवा व्यापार के लिए परदेश गए युवाओं और पीछे छूट गयी नायिकाओं की गाथाएं हैं।

राजस्थान में फड़ और कावड़ बाँचे जाने की सैकड़ों वर्ष पुरानी परम्पराएँ हैं, फड़ कपड़े पर बनी चित्रात्मक गाथा है, जिसे अपनी विशिष्ट गायन शैली में भोपों द्वारा विशेष वाद्यों की संगत में सुनाकर जन–समूह को रसास्वादित किया जाता है।[7] इसी प्रकार कावड़ एक लकड़ी का वहनीय मन्दिर होता है, जिसके एक–दूसरे से जुड़े कई पैनलों पर दृश्यकथाएँ चित्रित होती हैं। वाचक उन चित्रों के साथ पाठ, संगीत, हाव–भाव, नृत्य आदि के संयोजन से पौराणिक–ऐतिहासिक कहानियाँ सुनाते हैं।[8] अपने प्रारम्भिक स्वरूप में गो–संरक्षण तथा गोशाला–निर्माण हेतु धन–जुटाने हेतु प्रयुक्त होने वाले कावड़ समय के साथ चल–तीर्थ के रूप में परिवर्तित होते गए।[9] इसी तरह माच (मंच का अपभ्रंश रूप) के ख्याल में रातभर राजा गोपीचन्द, राजा भरतरी, अमर सिंह राठौड़, हमीर आदि जीवन्त हो उठते

Scanned with CamScanner

हैं।[10] स्वांग कला तो आज भी लोक–मानस को लुभाने के साथ–साथ समृद्ध परम्परा का सवंहन भी करती है।[11]

राजस्थान के उदयपुर अंचल में भीलों की एक प्रमुख नृत्य–नाटिका 'गवरी' है, जिसमें पूरे भाद्रपद वीर–गाथाओं के साथ–साथ सामयिक और सोद्देश्य प्रसंगों का सामुदायिक मंचन चलता है। न केवल शिल्प की दृष्टि से इसमें प्राचीनतम नाट्यशास्त्र के रूप को शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ सीधे–सरल ग्रामीण लोगों द्वारा जीवित रखा गया है, बल्कि इसके अनेक प्रसंगों में ऐतिहासिक घटनाएँ और पात्र जीवंत हो जाते हैं। राजा जैसल के रूप में जहाँ गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह सिद्धराज की झलक मिलती है, तो बादशाह के रूप में अपने चित्तौड़ अभियान के समय के बादशाह अकबर साकार हो उठते हैं।[12]

आदिवासी पर्यावरण चेतना के दर्शन हेतु इस नृत्य–नाटिका का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग है, जिसमें नृत्यनाटिका का नायक बूड़िया पेड़–पौधों को उजाड़ने और जंगल का विनाश करने वाले खड़लिया भूत को मारकर तांबावती नगरी के निवासियों को चिंता मुक्त करता है।[13] ऐसे ही बड़लिया हींदवा (बरगद–वृक्ष) की 'भारत' नाम से प्रसिद्ध गाथा, जो भीलों के विभिन्न पर्वों–अनुष्ठानों का अभिन्न अंग है, में देवी बरगद की रक्षा के लिए किए गए अपने वचन को पूरा करने के लिए 108 मनुष्यों की बलि दे देती हैं। "कई भाव, बिम्ब और अन्तकथाएँ लिए 'बड़लिया हिन्दवा' की यह गाथा सृष्टि चक्र, विश्वयुद्धों तथा विभीषिका को समझाने के लिए एक दुर्लभ दृष्टांत है।"[14] निश्चित रूप से ऐतिहासिक पुनर्रचना के लिए ये कथाएँ एवं नाट्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

बहुत सा पारम्परिक लोक ज्ञान जो अलग–अलग माध्यमों में प्रतिबिम्बित है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होता रहता है। शकुन–विचार, भविष्य–कथन, जल–संचय, जल–शोधन, कृषि–तकनीक आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त लोक ज्ञान को पहचान कर सरंक्षित–संवर्द्धित करने का दायित्व वर्तमान पीढ़ी का है। उदाहरण के लिए गरासिया भील–समुदाय के पास पारम्परिक औषधीय ज्ञान का अथाह भण्डार है। क्षेत्र की समृद्ध वानस्पतिक विरासत में से वे भूजल, कर, अरंडी, सेमल आदि का सटीक उपयोग विभिन्न बीमारियों के समय पर करते हैं।[15] आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों से यह पुष्ट हो पा रहा है कि स्थानीय पादपों की उनकी समझ इतनी विशिष्ट है कि किस विशेष बीमारी में किस पौधे का कौन–सा अंश सबसे लाभदायक है, यह ज्ञान भी उन्हें है।[16]

ऐसा ही इतिहास राजस्थानी व्यंजनों से भी अभिन्न है। यहाँ के व्यंजनों का तो अपना इतिहास है ही, व्यंजनों में भी इतिहास अभिव्यक्त है। जैसे दाल–बाटी यहाँ की युद्धक परिस्थितियों की उपज है, जो अल्प संसाधनों में कहीं भी, कभी भी बनाकर लम्बे समय तक खाई जा सकने में सक्षम होने के कारण यहाँ की सेनाओं का प्रमुख आहार रही।

Scanned with CamScanner

आमजन और अभिजन दोनों स्तरों पर अनगिनत खाद्य पदार्थ समय के प्रवाह में आते रहे। अकेले मेवाड़ क्षेत्र में मात्र मक्का से निर्मित 30 से अधिक पारम्परिक व्यंजन बनाए जाते हैं। स्थानीय जनों का मक्का प्रेम उनके गीतों, मुहावरों आदि में अभिव्यक्त है।[17] इसी तरह शाही खान–पान में हमें 80 से अधिक तरह की रोटियों के साथ–साथ बेनामी खीर, गार्लिक खीर, मलाई का पान, कलेजी का रायता, दूध का समोसा और अंडे का हलवा जैसे दुर्लभ व्यंजनों के उल्लेख मिलते हैं।[18] निश्चित रुप से अपनी पाक–विधियों के साथ समय के प्रवाह में विलीन होती जा रही ऐसी अनूठी खाद्य विरासतों को सहेजने और पुनर्जीवित करने में शाही रसोइयों, राज परिवार के वंशजों तथा खाद्य विरासत संग्राहकों के मौखिक साक्षात्कार बहुत आवश्यक हैं।

व्यंजनों की ही भाँति परिवर्तित हो रहे परिवेश में स्थानीय परम्पराओं, रीति–रिवाज और पर्वोत्सवों के भी प्रलेखन की आवश्यकता है। विशेष रूप से विविध राजघरानों की अनूठी प्रथाओं, परम्पराओं का प्रलेखन भावी पीढ़ियों के ज्ञान के लिए अत्यावश्यक है। उदाहरणार्थ रियासतकालीन मेवाड़ में राजदरबार की शिष्टाचार व्यवस्था में पान का बीड़ा प्रतीकात्मक रूप से अनेक प्रकार से अभिव्यक्त होता था। जैसे दरीखाने का बीड़ा, दोयम बीड़ा, त्यौहारी बीड़ा, कपूरी बीड़ा, सीख का बीड़ा आदि। इनमें 'दोयम बीड़ा' बहुत सम्मान का प्रतीक था। जब उमराव महलों में आते थे, उन्हें दरीखाने में बिठाया जाता था। वहाँ पुरोहित दो बीड़े लेकर आता था। उमराव उन दोनों बीड़ों को अपने स्थान पर बैठे हुए ग्रहण करता और आँखों से स्पर्श कर सम्मान प्रकट करता था। एक बीड़ा रखकर दूसरा वापस पुरोहित को दे देता था। इस विधि के बाद वह महाराणा की उपस्थिति वाले दरीखाने में प्रवेश करता था।[19]

इसी प्रकार 'सीख का बीड़ा' बहुत अनूठा था। अपनी चाकरी की अवधि समाप्त करने के बाद अपनी जागीर लौटने से पहले उमरावों को सीख का बीड़ा महाराणा से लेना अनिवार्य था। यहाँ तक कि यदि महाराणा शिकार पर गए हुए होते और इस कारण 'ओदी' में होते, ऐसे में यदि किसी जागीरदार को अपनी जागीर लौटना जरूरी होता तो महाराणा के पास अर्जी भिजवाई जाती और महाराणा सीख का बीड़ा बल्लम की नोंक पर बांध कर भेज देते।[20]

ऐसे ही पधरावणी, तलवार बंधाई, फूल डोल, तीज–गणगौर जैसे कितने ही अवसर–पर्व, परमार्थ की कछेड़ी (साधुओं–भिक्षार्थियों हेतु वस्त्र, कंबल आदि के अनुदान के लिए), सेज की ओवरी, अगोलिया की ओवरी (महाराणा के स्नान, उबटन, दातून, तौलिया, प्रसाधन आदि के लिए) जैसे राजकीय विभागों का प्रलेखन मौखिक पड़ताल से ही संभव है।

एवमेव भाषाओं, बोलियों का इतिहास खंगालने में मौखिक परम्परा बहुत उपयोगी हो सकती है। विशेष रूप से विकास, आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के

Scanned with CamScanner

परिणामस्वरूप तेजी से अप्रांसगिक होकर लुप्त हो रहीं भाषाओं, बोलियों और उनके शब्दों, शब्दावलियों संजोने में मौखिक परम्परा की बहुत भूमिका होगी।

निश्चित रूप से मौखिक इतिहास की अपनी सीमाएँ हैं। मूलतः स्मृति पर आधारित होने के कारण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण में तथ्यों के कुछ–कुछ छूटते जाने, साक्षात्कार विधा की अपनी सीमाओं आदि के कारण मौखिक इतिहास की विश्वसनीयता पर आधारित चुनौतियाँ स्वाभाविक हैं। लेकिन चुनौतियाँ और सीमाएँ प्रत्येक माध्यम में हैं। पूर्वाग्रह और विकृति की अवधारणाएं लिखित इतिहास के साथ भी उतनी ही जुड़ी हैं।

कुल मिलाकर मौखिक इतिहास अतीत की हमारी अंतर्दृष्टि का विस्तार करता है – विशेषकर पारम्परिक इतिहास द्वारा अनदेखा किए गए समाजों को वाणी देकर। ऐसे ही, अधिकांश पुरातात्त्विक खोजों के पीछे मौखिक आख्यान ही प्रमुख प्रेरक तत्त्व रहे हैं। आज अनेकों ऐसे उपकरण एवं तकनीक उपलब्ध हैं, जिनसे मौखिक साक्ष्यों को और धार दी जा सकती है। पुरातात्त्विक–साहित्यिक साक्ष्यों के साथ तालमेल और वैज्ञानिक कसौटियों द्वारा प्रति–परीक्षण और सत्यापन भी इसमें पर्याप्त सहायक हैं।

इस प्रकार मौखिक परम्पराएं सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास के शोध हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि के रूप में देखी जा सकती हैं और इस नाते अकादमिक अभ्यास के अनिवार्य अंग के रूप में इन्हें स्थान दिया ही जाना चाहिए ताकि विस्मृति के गर्त में जाकर खो जाने के कगार पर पहुँच गए इतिहास के एक बड़े हिस्से को समय रहते बचाया जा सके।

संदर्भ

1. एम. विन्टरनिट्ज, प्राचीन भारतीय साहित्य, मोतीलाल बनारसीदास, 1966, पृ. 1।
2. हर्षचरितम् (बाणभट्ट): पञ्चम उच्छ्वास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012, पृ. 303।
3. एम. विन्टर निट्ज, प्राचीन भारतीय साहित्य मोतीलाल बनारसीदास, 1966, पृ. 1, 2।
4. Oral history – wikipedia en.m.wikipedia.org
5. शोध पत्रिका (सं. डॉ. जीवन सिंह खरकवाल) वर्ष 69, अंक 1–4, पूर्णांक 274–277 (ISSN 0975-6868), साहित्य संस्थान उदयपुर के अन्तर्गत प्रतिभा पाण्डे एवं हेमेन्द्र सिंह सारंगदेवोत का अल्लाउद्दीन खिलजी के मेवाड़ अभियान से जुड़ी लोक स्मृतियाँ एवं कुछ अनुद्घाटित प्राथमिक स्त्रोत (पृ. 21)।
6. पी. एल मेनारिया, भीलों की लोककथाएं भाग–2, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, पृ. 23।
7. नंदिनी सिन्हा कपूर, स्टेट फॉरमेशन इन राजस्थान : मेवाड़ ड्यूरिंग सेवन्थ – फिफ्टीन्थ सेन्चुरीज, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 131।
8. स्वाति जैन, राजस्थान के लोक साहित्य में राश्ट्रीय चेतना का विवेचन (लिनासियन – सं. डॉ. प्रतिभा जनवरी 2018 से जुलाई 2019), Vol. 11-12
9. कमलेश माथुर, क्रॉफ्ट्स एंड क्रॉफ्ट्समैन, पॉईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. 2
10. वही, पृ. 139
11. डॉ. विक्रम सिंह राठौड़, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ. 60
12. डॉ. चन्द्रमणि सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 286।
13. डॉ. श्रीकृश्ण जुगनू, मेवाड़ का प्रारम्भिक इतिहास, आर्यावत संस्कृति संस्थान, दिल्ली, पृ. 179–180

Scanned with CamScanner

13. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री लोगर जी, गवरी पात्र, उदयपुर। आयु 60 वर्ष।
14. डॉ. चन्द्रमणि सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 113।
15. निखिल कुमार, 'एन ओरल स्टडी ऑफ गरासिया ट्राइब', ट्राइब (जन.–दिस. 2016 एवं जनवरी–जून 2017), उदयपुर, पृ. 88।
16. निखिल कमार, 'ओरल हिस्ट्री एंड फोकलोरः ए स्टडी ऑफ ट्रेडीशनल एनवॉयरनमेन्टल नॉलेज एंड पर्सेप्शन्स अमंग एथनिक गफ्रप ऑफ अरावली माउंटेन्स ऑफ इण्डिया, वर्ड्स एंड साइलेन्सस, (सितम्बर 2019) मैमोरी एंड नैरेशन–ए जर्नल ऑफ इन्टरनेशनल ओरल हिस्ट्री एसोसिएशन, यू.एस.ए., पृ. 122।
17. डॉ. प्रियदर्शी ओझा, 'मेवाड़ में मक्का से बने विभिन्न व्यंजनों का विश्लेषण, फूड हैरिटेज ऑफ राजस्थान, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, पृ. 217–218।
18. (i) डॉ. मोहब्बत सिंह राठौड़, निदेशक प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर से व्यक्तिगत साक्षात्कार
(ii) पूर्व शाही शैफ मुकेश पालीवाल उदयपुर, व्यक्तिगत साक्षात्कार
19. धर्मपाल शर्मा, मेवाड़ संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1999, पृ. 87
20. वही, पृ. 99

❑❑❑

Scanned with CamScanner